Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

प्राचीन भारत में सिचांई प्रबंधन

डॉ0 विजय कुमार
विभागाध्यक्ष एवं असि0 प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग,
इ0 सि0 स0 सं0 से0 राजकीय महाविद्यालय,
पचवस, बस्ती, उत्तर प्रदेश,भारत।

शोध सरांश – सिचाई को भारतीय कृषि का आधारभूत स्तम्भ माना जाता है। प्राचीन भारत में अर्थव्यवस्था का आधार कृषि और पशुपालन ही रहा है। जलस्रोतों एवं नदियों को सदा जल से पूरित रहने की कामना की गई। सैन्धव सभ्यता के विकास में अन्नोत्पादन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। बन्धों के अतिरिक्त कृषि भूमि के चारों ओर मेड़ बनाकर ऋतु में जल को संचित कर उसमें खेती की जाती थी। सिंचाई के लिए व्यक्तिगत और राजकीय दोनों स्तर, मौर्य शासकों की सिंचाई प्रबन्धन के अनुभाग थे। सिंचाई के लिए चार प्रमुख प्रणालियों का प्रयोग किया जाता था– हाथों से, कंधों पर पानी ले जाकर, यंत्रों के द्वारा या नहरों, ताड़ागों के द्वारा। वायु द्वारा (पवन चक्की) खींचे हुए पानी को स्रोतयंत्र प्रावर्तिमम् कहते थे तथा सेतुबंध के अनर्तगत बांध बनाकर उससे नहरें या नालियां निकालकर सिंचाई की जाती थी। अखण्ड भारत के निर्माता चन्द्रगुप्त मौर्य के कार्यकाल में सुदर्शन झील का निर्माण हुआ। जल प्रबन्धन का पहला प्रमाण प्राचीन भारत के धौलावीरा में स्थित अनेक जलाशयों से मिला। सिंचाई कृषि में एक ऐसी नवीनता थी, जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन भारतीय नियमित रूप से फसल, भोजन और पशुधन में सक्षम हो गये, जिससे सभ्यता का विकास तीव्र गति से हुआ।

कूट शब्द – कूप, बावडी, वृत्र , रोधस, अवत , उत्स , सुषिरा, अदेवमातृक ।

भारत प्रारम्भ से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है। यहॉ फसल के लिए जल की आवश्यकता सदैव बनी रही है। यहॉ की भूमि उर्वर रही है, इसलिए जल को जमीन से अधिक मूल्यवान माना गया क्योंकि उर्वर जमीन को जैसे ही पर्याप्त सिचांई मिलती है तो कई गुना उत्पादन बढा देता है। हमारे प्राचीन मनीषियों ने मस्तिष्क को विचारों का केन्द्र माना है, यही कारण रहा कि समाज परिस्थितियों के साथ–साथ अपने विचारों एवं तकनीकों में परिवर्तन लाता रहा है। आवश्यकता एवं परिर्वतित विचारों के माध्यम से मानव चेतना के फलस्वरूप प्राचीन भारत में सिचाई व्यवस्था में निरन्तर विकास देखने को मिलता है। सिचाई को भारतीय कृषि का आधारभूत स्तम्भ माना जाता है। प्राचीन भारत में अर्थव्यवस्था का आधार कृषि और

पशुपालन ही रहा है। कृषक प्रायः मानसून पर ही निर्भर था, फिर भी स्वयं के द्वारा या राज्य के द्वारा भूमि को सिंचित करने का प्रयास किया गया।

मनुष्य के जीवन की बिना जल के कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्राचीनकाल से समस्त विश्व से इस बात के प्रमाण मिले है कि नदियों तथा झीलों इत्यादि का प्रयोग न केवल व्यापार हेतु प्रचुरता से किया गया बल्कि इस व्यापार का आधार कृषि की सिंचाई के लिए भी हुआ। आदिकाल से ही मानव ने सिंचाई के विभिन्न साधनों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया था। वर्षा के जल को संग्रहित करने के लिए विभिन्न तौर–तरीके अपनायें। सिंचाई के समुचित प्रबन्धन के साथ–साथ कूप, बावडी, तालाब, नहरों और झीलों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार भी शासकों ने करवाया। वैदिक ऋषियों ने जल की महत्ता पर मंत्रों एवं सूक्तों की रचना की। जलस्रोतों एवं नदियों को सदा जल से पूरित रहने की कामना की गई। सैन्धव सभ्यता के विकास में अन्नोत्पादन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस अन्नोत्पादन में सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियों ने सिंचाई के साधन के रूप में महत्वपूर्ण योग दिया। इस सभ्यता के उपवर्ती प्रदेशों में कृषि के लिए इन नदियों का जल सिंचाई के काम में आता था। इसी युग में बलुचिस्तान में पत्थर के बने बॉधों से नदियों का पानी रोककर सिंचाई की जाती थी। मश्काई घाटी में ऐसे दो बॉध मिले हैं, जिनके द्वारा ऊपर पर्वत से आते जल को एक निश्चित दिशा में बहाकर एकत्र किया जाता था और समयानुसार उससे सिंचाई की जाती थी। डी0डी0 कौशाम्बी के अनुसार सिन्धु की सहायक नदियों पर बॉधों को निर्मित कर देने से नदी का जल तथा जलोढ़ मिट्टी दोनों तरफ फैल जाती थी, फिर इस मिट्टी को नुकीले यन्त्र से खरोच कर बीज डाल दिया जाता था। सम्भवतः आर्यों के द्वारा इन बॉधों को नष्ट कर दिया गया। इससे इनके अवशेष आज अप्राप्त हैं। यद्यापि ऋग्वेद में प्रयुक्क 'वृत्र' तथा 'रोधस' शब्द से बॉध या अवरोध का बोध होता है। एक सूक्त में है कि इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्र का वध कर नदियों के जल को मुक्त किया और यह जल सूखी भूमि पर चारों और फैल गया। इन बन्धों के अतिरिक्त कृषि भूमि के चारों ओर मेड़ बनाकर ऋतु में जल को संचित कर उसमें खेती की जाती थी।

अथर्ववेद में जल के स्रोत एवं उसकी महत्ता की विशद् चर्चा है। इससे स्पष्ट है कि वैदिककालीन कृषक सिंचाई प्रबन्ध से पूर्णतः परिचित थे। सिंचाई प्रधानता कुओं से की जाती थी। तत्कालीन कुओं को 'अवत' और 'उत्स' कहते थे। चक्र के द्वारा जल को निकाला जाता था। चक्र से वरत्रा (रस्सी) और वरत्रा से कोश सम्बद्ध होता था। लकड़ी के कुण्ड से आहाव में जल पड़ता था। जल को सुर्मी या सुषिरा (नाली) से खेतों तक पहुंचाया जाता था। वैदिक काल में वर्षा का जल ही सिंचाई का मुख्य साधन था, परन्तु ऋग्वेद के एक मंत्र में खनित्रिभा (खोदने से प्राप्त होने वाला जल) और स्वयंजा (नदी आदि प्राकृतिक जलाशय) के उल्लेख से सिंचाई प्रबंधन की समुचित व्यवस्था का पता चलता है। कूप तड़ाग और बावड़ी खोदने के उपकरणों जैसे– कुदाल का भी वर्णन वैदिक साहित्य में है। ऋग्वेद में चार प्रकार के जल का उल्लेख हुआ है– (1) दिव्य जल (वर्षा जल) (2) स्त्रवणशील जल (नदियों का जल) (3) खनित्रिभा जल

(खोदे हुये कूप या बावड़ी का जल) (4) स्वयंजा जल (पर्वतीय हिम जल)। अथर्ववेद में भी प्राकृतिक एवं कृत्रिम जल स्रोत यथा कुंआ, नहर, जलाशय इत्यादि का वर्णन है, जिससे सिंचाई होती थी।

महाभारत में कहा गया है कि कृषि को वर्षा के अधीन नहीं छोड़ी जानी चाहिए। महाकाव्य काल में दो प्रकार के जलाशयों का उल्लेख मिलता है, प्रथम– प्राकृतिक नालों को बांधकर तथा द्वितीय– भूमि को खोदकर बनाये हुए। महाभारत कालीन तड़ागों के चारो वृक्ष आरोपित होते थे। तड़ागों में वर्षा जल एकत्र किया जाता था। बांधों के निर्माण में कभी–कभी सभी ग्रामवासी सम्मिलित होकर कार्य करते थे। सिंचाई के लिए बीस हल से जोती जाने योग्य भूमि पर एक कुआं बनाने का भी उल्लेख मिलता है। सेतुबन्ध (जलाशय) को अनाज की उत्पत्ति हेतु आवश्यक माना गया है। मौर्यकाल में विभिन्न प्रकार की भूमि का विवरण मिलता है। भूमि करों का निर्धारण भी भूमि के वर्गीकरण के आधार पर किया जाता था। मौर्यकालीन कृषक भी मानसून पर ही ज्यादा निर्भर थे। बिना वर्षा के अच्छी पैदावर देने वाली भूमि को 'अदेवमातृक भूमि' कहा जाता था। मौर्यकाल में भूमि को सिंचित करने का व्यापक प्रयास किया गया था। सम्राट अशोक के अभिलेखों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र व शकक्षत्रप रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से मौर्यकालीन सिंचाई प्रबन्ध की जानकारी प्राप्त होती है। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रान्तीय शासन पुष्यगुप्त वैश्य ने सुदर्शन झील के जल के उपयोग के लिए बांध बनवाया था। सम्राट अशोक के समय यवनराज तुषारप ने इस बांध से सिंचाई के लिए नालियां निकाली थीं। शक क्षत्रप रूद्रदामन के समय में जब यह बांध बाढ़ के कारण टूट गया था, तब रूद्रदामन ने जल प्रबन्धन एवं जन–कल्याण को अपना धर्म मानते हुए निजी व्यय पर इस बांध की मरम्मत करवाकर सिंचाई प्रबंधन की मिसाल कायम की।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार मौर्यकाल में सिंचाई के लिए चार प्रमुख प्रणालियों का प्रयोग किया जाता था– हाथों से, कंधों पर पानी ले जाकर, यंत्रों के द्वारा या नहरों, ताड़ागों के द्वारा। वायु द्वारा (पवन चक्की) खींचे हुए पानी को स्रोतयंत्र प्रावर्तिमम् कहते थे तथा सेतुबंध के अनर्तगत बांध बनाकर उससे नहरें या नालियां निकालकर सिंचाई की जाती थी। राज्य के द्वारा भी सिंचाई के साधनों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित कया जाता था। यथा– यदि कोई कृषक तालाब को नये सिरे से बनाता था तो उसे पांच वर्ष के लिए भूमि कर से मुक्त कर दिया जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार धन लगाकर, स्वयं परिश्रम करके निर्मित किये हुए तालाब आदि से, हाथ से जल ढोकर खेत की सिंचाई करने पर, कृषकों को अपनी उपज का पांचवां हिस्सा राजा को कर के रूप में देना चाहिए। कन्धे से पानी ढोकर सींचने पर चौथा हिस्सा तथा छोटी नहर या नालियां बनाकर सींचने पर उपज का तीसरा हिस्सा राजा को देना चाहिए। कौटिल्य ने बांध को हानि पहुंचाने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की। कौटिल्य के अनुसार सर्वोत्तम राज्य वह है जो अदेवमातृक अर्थात् कृषि के लिए वर्षा जल पर निर्भर न हो, बल्कि वहां नदी, झील, तालाब, इत्यादि प्रचुर मात्रा में सुलभ हों। कौटिल्य ने तालाबों के जीणोद्धार करने वाले को चार वर्ष, तालाब की साफ–सफाई की विशेष व्यवस्था वाले को तीन वर्ष और यदि कोई सूखी एवं परती भूमि को कृषि योग्य बनाता हो तो उसे दो वर्ष तक कर में छूट देने की व्यवस्था की। सिंचाई के लिए व्यक्तिगत और राजकीय दोनों स्तर, मौर्य शासकों

की सिंचाई प्रबन्धन के अनुभाग थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के कार्यकाल में प्राचीन भारतीय कृषक सिंचाई के साधनों, यथा–तालाब, बाँध इत्यादि से न केवल परिचित था बल्कि वर्षा के लक्षण मिट्टी के प्रकार और जल–प्रबन्धन के तरीकों से भी अच्छी तरह से परिचित था।

बुद्धकालीन भारत में भी जल संरक्षण और सिंचाई व्यवस्था पर पर्याप्त संकेत जातक कथाओं में बहुलता से मिलता है। कुणाल जातक से ज्ञात होता है कि रोहिणी नदी के जल के प्रयोग को लेकर शाक्यों और कोलियों के मध्य हुए विवाद को स्वयं बुद्ध ने शान्त कराया था। कुलावक जातक व बौद्धायन धर्मसूत्र के अनुसार लोग आपस में मिलकर कुएं खोदते थे तथा बांध बनाते थे। चुल्लवग्ग में कुएं के जल को तुला, चक्र (रहट) एंव बैलों की जोड़ी द्वारा निकाले जाने का प्रसंग मिलता है। पाणिनी ने भी अष्टाध्यायी में उदंयन (चरस व मोट) एवं युगवरमा (रहट) का उल्लेख किया है। मौर्योत्तर काल में सिंचाई प्रबन्धन के व्यापक प्रयास हुए जिसमें सातवाहनों द्वारा अरहट (रहट), शकों और कुषाणों के काल में कूपों व तड़ागों का पर्याप्त उल्लेख है। मनुस्मृति में तड़ागों का विक्रय पत्नी व पुत्र के विक्रय के समान पापकर्म माना गया है। नारद स्मृति में भूमि खोदकर जल संरक्षण करने तथा बांध निर्मित कर अतिरिक्त जल रोकने का विवरण है। परवर्ती गुप्त शासक आदित्यसेन की पत्नी कोणदेवी ने तड़ाग का निर्माण करवाया था। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी सिंचाई के निर्मित नहरों का उल्लेख किया है। कल्हण की राजतरंगणि से ज्ञात होता है कि सप्पू नामक अभियंता ने सिंचाई के लिए नहर का निर्माण कराया था। पश्चिमी, चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने अन्हिलपाटन में एक झील बनवाई थी।

मिस्त्र और मेसोपोटामिया में लगभग 6000 ई०पू० में सिंचाई प्रारम्भ हुई थी। 3100 ई०पू० में मिस्त्र में पहली बड़ी सिंचाई परियोजना बनी। नील नदी से बाढ़ के पानी को 'मानसर' नामक झील जो कि मानव निर्मित थी, में भेजा गया। इसके लिए बांधों और नहरों का निर्माण हुआ। प्राचीन भारत में भी नहर प्रणाली को पर्याप्त महत्व दिया गया। राजा हम्मूराबी जल संसाधनों की स्थापना करने वाला पहला शासक था। इसी प्रकार अखण्ड भारत के निर्माता चन्द्रगुप्त मौर्य के कार्यकाल में सुदर्शन झील का निर्माण हुआ। जल प्रबन्धन का पहला प्रमाण प्राचीन भारत के धौरावीर में स्थित अनेक जलाशयों से मिला। हड़प्पा सभ्यता के इस क्षेत्र में बाद के पानी की निकासी की बेहतर व्यवस्था थी। इसी प्रकार कुएं बनाने की कला भी सैन्धवकाल में ज्ञात थी। कच्छ और बलूचिस्तान में निर्मित बांध जो कि वर्षा जल के संरक्षण के लिए बने थे, सिंचाई प्रबन्धन का उत्कृष्ट उदाहरण है। सिंचाई कृषि में एक ऐसी नवीनता थी, जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन भारतीय नियमित रूप से फसल, भोजन और पशुधन में सक्षम हो गये, जिससे सभ्यता का विकास तीव्र गति से हुआ। सिंचाई ने भोजन की सतत् आपूर्ति सुनिश्चित की। सिंचाई न केवल अधिक समृद्धि के लिए सीधे की गयी बल्कि अकाल के बुरे प्रभावों को रोकने में भी प्रभावी रही। नहर सिंचित भूमि की पैदावार असिंचित भूमि की तुलना में अधिक थी।

सन्दर्भ

1. कौटिल्य, अर्थशास्त्र
2. डी0 डी0 कौशाम्बी , द कल्चर एण्ड सिविलाईजेशन आफ ऐंशेंट इण्डिया।
3. सत्यकेतु विद्यालंकार , प्राचीन भारत : प्रारंभ से 1206 ई0
4. जनरल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, जिल्द 66
5. इण्डियन एण्टीक्वेटी जनरल्—भाग—6, कैमब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
6. Anil Agarwal & Sunita Narain, (eds), Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of India's Traditional Water-Harvesting Systems, Centre for Science and Environment, New Delhi, 1997
7. Davison-Jenkins,D.J. - The Irrigation and Water Supply Systems of Vijayanagara, Manohar & American Institute of Indian Studies New Delhi, 1997
8. Nitya Jacob, Jalyatra: Exploring India's Traditional Water Management Systems, Penguin Books, 2008
9. T.M. - Irrigation and Water Supply: South India, 200 BC – 1600 AD, New Era Publications, Madras, 1991
10. Uma Shankari & Esha Shah, Water Management Traditions in India, PPST Foundation, Chennai